Dr. Nishat Jhan 5/5/20
Legal language (9) LL.B VI Sem

अनुसरण करना या न करना उनके विवेक पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, भारत के किसी एक उच्च न्यायालय (High Court) द्वारा दिया गया निर्णय अन्य उच्च न्यायालयों के स्वविवेक पर निर्भर रहता है कि वे उस निर्णय का अनुसरण करें या न करें। यही कारण है कि अनुनयी पूर्व-निर्णय को विधि का ऐतिहासिक स्रोत माना गया है न कि विधिक स्रोत।

उल्लेखनीय है कि कभी-कभी एक ही पूर्व-निर्णय एक न्यायालय के लिए तो प्राधिकारिक होता है परन्तु दूसरे के लिए वह अनुनयी होता है। अतः पूर्व-निर्णय प्राधिकारिक हैं अथवा अनुनयी, यह परिस्थिति-विशेष पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिए, किसी उच्च न्यायालय का निर्णय उसके अधीनस्थ अदालतों के लिए प्राधिकारिक (authoritative) होगा[36] जबकि अन्य उच्च न्यायालयों के लिए वह अनुनयी (persuasive) होता है। इसी प्रकार अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी न्यायाधीशों के निर्णय भारतीय न्यायालयों के लिए केवल अनुनयी प्रभाव रखते हैं। इंग्लैण्ड में न्यायाधीशों द्वारा घोषित इतरोक्ति (obiter dicta) अनुनयी प्रभाव रखती है।[37]

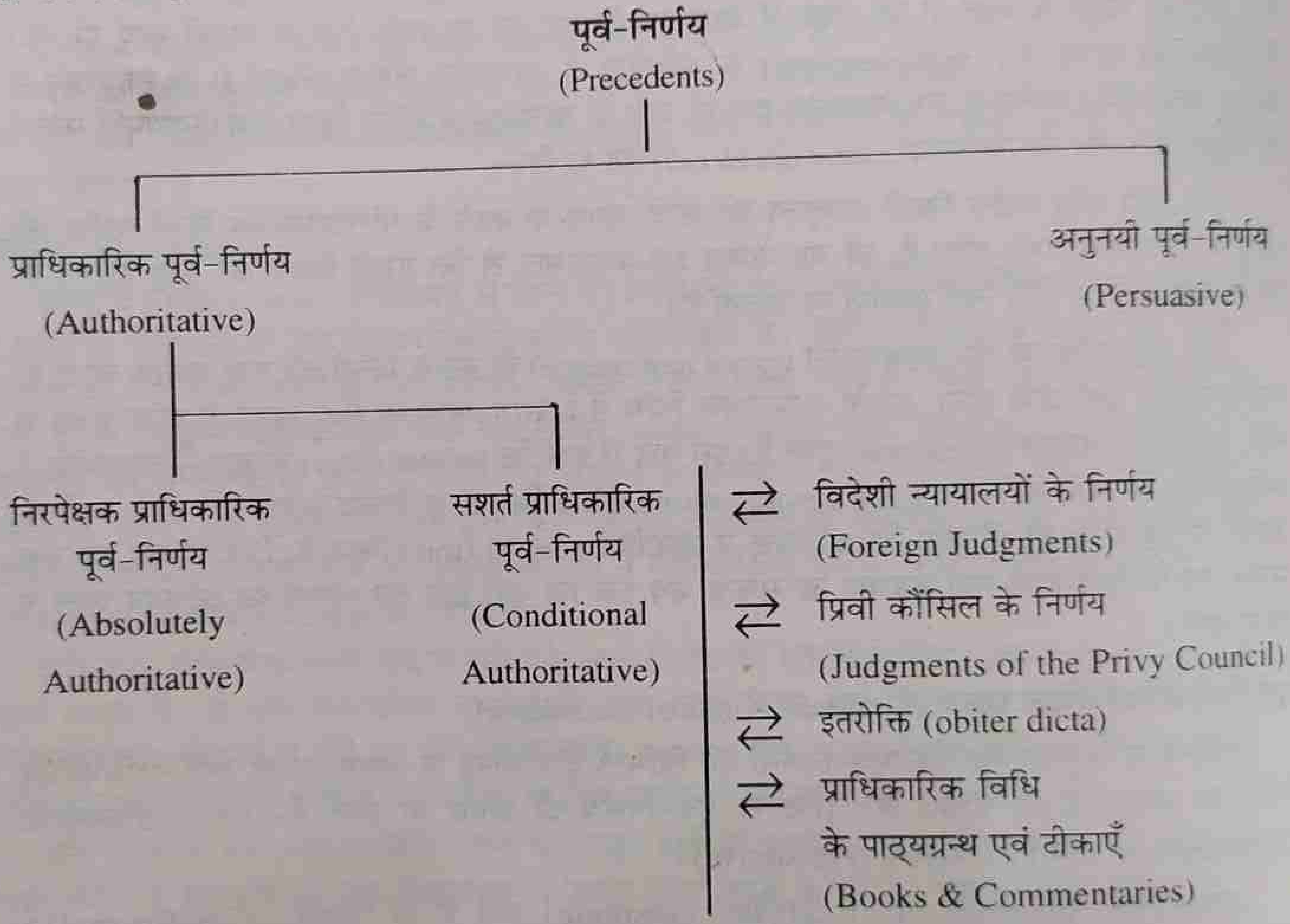

निरपेक्ष तथा सशर्त प्राधिकारिक पूर्व-निर्णय

सामण्ड ने प्राधिकारिक पूर्व-निर्णयों (Absolute Precedents) को दो भागों में विभाजित किया है—(1) निरपेक्ष प्राधिकारिक पूर्व-निर्णय (Absolutely Authoritative Precedents) तथा (2) सशर्त प्राधिकारिक पूर्व-निर्णय (Conditional Authoritative Precedents)। निरपेक्ष प्राधिकारिक पूर्व-निर्णय न्यायालयों पर अनिवार्यतः बन्धनकारी होता है तथा अयुक्तियुक्त होने पर भी इन्हें न्यायालय अस्वीकार नहीं कर सकते हैं।[38]

36. *पमलाई पद्याची बनाम अन्नामलाई पद्याची, 56 एल० डब्ल्यू० 494.*
37. *एटार्नी जनरल बनाम डोन एण्ड केनन्स ऑफ विन्डसर, 8 एच० एल० 369.*
38. *प्रोड्यूस ब्रोकर्स कम्पनी बनाम आइल ओलम्पिया एण्ड कोक कं०* (1916), 1 ए. सी 314.

10

इसके विपरीत सशर्त प्राधिकारिक पूर्व-निर्णयों को कुछ परिस्थितियों में न्यायालयों द्वारा अनुसरण किये जाने से इन्कार किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, इंग्लैण्ड के निचले न्यायालयों के लिए वहाँ के कोर्ट ऑफ अपील द्वारा दिये गये निर्णय निरपेक्ष प्राधिकारिक पूर्व-निर्णय (Absolutely Authoritative Precedents) का महत्व रखते हैं[39] तथा वे प्रत्येक दशा में इन निर्णयों का अनुसरण करने के लिए बाध्य हैं। किन्तु हाउस ऑफ लार्ड्स (House of Lords) के लिए ये निर्णय केवल सशर्त प्राधिकारिक पूर्व-निर्णय (Conditional Authoritative Precedents) होते हैं। अतः यदि हाउस ऑफ लार्ड्स के विचार में कोर्ट ऑफ अपील द्वारा दिया गया कोई निर्णय न्याय-प्रशासन में प्रत्यक्ष रूप से बाधक होता है, तो वह उसे निराकृत (over-rule) कर सकता है।

भारत में किसी उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ (Single Bench) का निर्णय उसी न्यायालय की किसी अन्य एकल न्यायाधीश की न्यायपीठ द्वारा नहीं पलटा जा सकता है। यदि न्यायाधीश को निर्णय में कोई विसंगति दिखाई देती है तो वह उस निर्णय को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को आवश्यक निर्देश हेतु भेज सकता है।[40] सामान्यतः ऐसे मामले दो न्यायाधीशों की खंडपीठ को निर्दिष्ट (refer) किये जाते हैं।[41] एकल न्यायापीठ के निर्णय को उसी न्यायालय की खण्डपीठ (Division Bench) के निर्णय द्वारा पलटा जा सकता है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय की खण्ड-पीठ के निर्णय को उसी न्यायालय की किसी दूसरी खण्ड-पीठ द्वारा नहीं पलटा जा सकता।[42]

मौलिक तथा घोषणात्मक-पूर्व निर्णय

सामण्ड ने पूर्व-निर्णयों के स्वरूप की दृष्टि से उन्हें दो वर्गों में विभक्त किया है—

(1) मौलिक पूर्व-निर्णय (Original Precedents); तथा

(2) घोषणात्मक पूर्व-निर्णय (Declaratory Precedents)।

मौलिक पूर्व-निर्णय विधि के लिए नये नियमों का निर्धारण करते हैं। जब न्यायालय नई-नई व्याख्याओं द्वारा नये नियमों का प्रतिपादन करते हैं तो मौलिक पूर्व-निर्णय का सृजन होता है। उदाहरणार्थ, **गोलकनाथ** बनाम **पंजाब राज्य**[43] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने संविधान संशोधन से संबंधित अनुच्छेद 368 के संदर्भ में भविष्यलक्षी निराकृति (Prospective Overruling) का मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए अभिनिर्धारित किया कि संसद द्वारा नागरिकों के मूलभूत अधिकारों को इस निर्णय की तिथि से भविष्य में किसी भी प्रकार से सीमित नहीं किया जा सकेगा। अतः इस निर्णय को मौलिक पूर्व-निर्णय कहा जाएगा क्योंकि इसके द्वारा सांविधानिक विधि के क्षेत्र में सर्वप्रथम भविष्यलक्षी निराकृति का नियम लागू किया गया है। इसी प्रकार **केशवानंद भारती** बनाम **केरल राज्य**[44] के निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने भारत के संविधान के संदर्भ में प्रथम बार **'मूल-ढांचे का सिद्धान्त'** (Basic Structure Theory) प्रतिपादित किया जिसके अनुसार संसद संविधान के किसी भी भाग में कोई ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जिसके परिणामस्वरूप संविधान के मूल ढाँचे पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

घोषणात्मक पूर्व-निर्णय वे होते हैं जो पूर्व से ही विद्यमान विधि के नियमों की घोषणा करते हैं। इस प्रकार के पूर्व-निर्णय किसी नई विधि का सृजन नहीं करते। घोषणात्मक पूर्व-निर्णयों की संख्या मौलिक पूर्व-निर्णय की संख्या की तुलना में कहीं अधिक होती है। ये पूर्व-निर्णय अधिकांशतः प्रथाओं पर आधारित

---

39. कोर्ट ऑफ अपील स्वयं के निर्णय से भी बाध्य नहीं है, देखिये *गेली* बनाम *ली* तथा अन्य (1969) 1 All ER 1062 के वाद में लार्ड डेनिंग द्वारा दिया गया निर्णय।
40. *त्रिभुवनदास* बनाम *रत्तीलाल,* 70 बम्बई एल० आर० 73.
41. *के० सी० नम्बियार* बनाम *मद्रास राज्य,* ए० आई० आर० 1953 मद्रास 35.
42. *शेशम्मा* बनाम *वेंकट नरसिंहराव,* (1940), 1 एम० एल० जे० 400 एफ० बी० 412.
43. ए० आई० आई० 1965 सु० को० 845.
44. ए० आई० आर० 1973 सु० को० 1461.

होते हैं। सामण्ड के अनुसार घोषणात्मक पूर्व-निर्णय को पृथक् वर्ग में स्वीकार करना उचित नहीं है, क्योंकि जो पूर्व-निर्णय विधि का निर्माण करता है, वह उसकी घोषणा भी करता है।

पूर्व-निर्णय के बन्धनकारी प्रभाव को नष्ट करने वाली विधियाँ
(Circumstances destroying the binding force of Precedent)

विधि का यह सामान्य नियम है कि न्यायिक पूर्व-निर्णय का प्रभाव बन्धनकारी होता है। परन्तु इस सामान्य नियम के कतिपय अपवाद हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों में या तो पूर्व-निर्णय प्रारम्भ से ही बन्धनकारी शक्ति नहीं रखते या उनकी बन्धनकारी शक्ति का कालांतर में लोप हो जाता है। ये स्थितियाँ निम्नलिखित हैं—

1. प्रारम्भ से ही बन्धनकारी प्रभाव-रहित पूर्व-निर्णय

(i) कानून की अनभिज्ञता (Ignorance of Statute)—यदि कोई पूर्व-निर्णय प्रचलित कानून या अधिनियम की अनभिज्ञता के कारण दिया गया है, तो वह बन्धनकारी प्रभाव नहीं रखेगा। इसी प्रकार यदि न्यायालय को किसी कानून के अस्तित्व के विषय में जानकारी होते हुए भी असावधानी के कारण वह उसके विपरीत निर्णय देता है, तो ऐसा निर्णय बन्धनकारी प्रभाव नहीं रखेगा। ऐसे पूर्व-निर्णय को निचले न्यायालय भी मानने से इंकार कर सकते हैं।

(ii) उच्चतर न्यायालय के पूर्ववर्ती-निर्णयों के बीच विसंगति (Inconsistency with earlier decisions of higher Court)—यदि किसी न्यायालय द्वारा कोई ऐसा निर्णय दिया जाता होगा जो उच्चतर न्यायालय के किसी पूर्ववर्ती निर्णय की अनदेखी करता है, तो ऐसे निर्णय का पूर्वोक्ति के रूप में बन्धनकारी प्रभाव नहीं होगा। उदाहरणार्थ, यदि उच्च न्यायालय किसी मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय की अनदेखी करते हुए निर्णय देता है, तो उच्च न्यायालय का इस प्रकार दिया गया निर्णय उसकी निचली अदालतों पर भी बन्धनकारी प्रभाव नहीं रखेगा।[45]

(iii) उसी न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णय के बीच विसंगति (Inconsistency between earlier decisions of the same Court)—कोई न्यायालय अपने पूर्ववर्ती ऐसे निर्णयों से आबद्ध नहीं होगा जो परस्पर प्रतिकूल हों। ऐसी स्थिति में न्यायालय परस्पर-विरोधी निर्णयों में से किसी एक का अनुसरण कर सकता है। यदि नया निर्णय पुराने निर्णय के प्रतिकूल है, तो न्यायालय पहले मामले में दिये गये निर्णय को मानने के लिए बाध्य नहीं है। यदि वह उचित समझे, तो बाद के निर्णय का अनुसरण कर सकता है। सारांश यह है कि एक ही न्यायालय या समान अधिकार रखने वाले न्यायालय पूर्ववर्ती निर्णय की तुलना में पश्चात्वर्ती निर्णय को या पश्चात्वर्ती निर्णय की तुलना में पूर्ववर्ती निर्णय को, प्रकाशित निर्णय की तुलना में अप्रकाशित निर्णय को या अप्रकाशित निर्णय की तुलना में प्रकाशित निर्णय को और स्वयं अपने निर्णय की तुलना में समान अधिकार वाले किसी अन्य न्यायालय के निर्णय को स्वीकार करने के लिए स्वतन्त्र हैं।

(iv) वाद से सम्बन्धित सुसंगत मुद्दे या निर्णय पर बहस पूरी किये बिना दिये गये निर्णय (precedent *sub silentio*)—यदि किसी विनिश्चय में अन्तर्ग्रस्त विधि-सम्बन्धी किसी महत्वपूर्ण मुद्दे की न्यायालय को जानकारी न रही हो, अथवा वह मुद्दा विचारार्थ प्रस्तुत न किया गया हो, तो ऐसा विनिश्चय अज्ञानतावश दिया गया माना जाता है। **जेराड बनाम बथ ऑफ पेरिस लिमिटेड**[46] का वाद इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें कम्पनी के उन्मोचित कर्मचारी ने, जिसने कि सदोष पदच्युति के लिए कम्पनी के विरुद्ध नुकसानी प्राप्त कर ली थी, कम्पनी के परिसमापक के नाम बैंक लेखे पर गारनिशी[47] आदेश के लिए आवेदन

---

45. *यंग बनाम ब्रिस्टल, एरोप्लेन कं० लि०* (1944) के० बी० 729.
46. (1936) ए० ई० आर० 905.
47. 'अ' द्वारा 'ब' को रकम देय है। 'स' ने 'ब' पर एक रकम की डिक्री प्राप्त की। 'स' के आवेदन पर न्यायालय ने आदेश दिया कि 'अ' डिक्री की रकम के बराबर रकम 'स' को देने के लिए न्यायालय में जमा करे अथवा इसके विरुद्ध कारण दर्शाये। ऐसा आदेश गारनिशी आदेश कहलाता है।

12

किया। केवल दावेदार के ऋण की पूर्विकता के प्रश्न पर बहस की गई थी और इस बहस की सुनवाई हो जाने पर अपीलीय न्यायालय ने आदेश मंजूर कर दिया था। इस प्रश्न पर कि क्या परिसमापक के नाम बैंक लेखे पर गारनिशी आदेश कानूनी रूप से दिया जा सकता है, कोई विचार नहीं किया गया था। अतः जब बाद में अपीलीय न्यायालय के समक्ष इस विषय पर बहस की गयी, तो न्यायालय ने यह विनिश्चित किया कि वह अपने पूर्ववर्ती निर्णय से आबद्ध नहीं है।

अज्ञानतावश दिये गये निर्णय और मामले से सम्बन्धित सुसंगत मुद्दे पर बहस पूरी हुए बिना दिये गये निर्णय में अन्तर है। यदि किसी मामले में न्यायालय के समक्ष उस मुद्दे पर थोड़ी भी बहस की जाती है जिस पर यह निर्णय दिया जाता है, तो निर्णय को अज्ञानतावश दिया गया नहीं कहा जा सकेगा। संक्षेप में अज्ञानतावश दिया गया निर्णय बहस न किये गये मुद्दे सम्बन्धी विशिष्ट प्रकार का निर्णय है। कुछ विधिवेत्ताओं की राय में अज्ञानतावश तथा बहस के बिना दिये गये निर्णय महत्वहीन होते हैं। यदि किसी पूर्व-निर्णय में बहस ठीक से नहीं हुई हो, तो वह पूर्व-निर्णय पूर्णतः नष्ट नहीं हो जाता है।

(v) समानतः विभक्त न्यायपीठों के निर्णय (Decision of equally divided court)—यदि किसी खंडपीठ में न्यायाधीशों का समान रूप से मत-विभाजन हो, वहाँ उस खंडपीठ द्वारा निर्णय नहीं दिया जाता, अपितु उनके पुनर्विचार हेतु किसी उच्चतर खंडपीठ या पूर्णपीठ के पास अन्तरित कर दिया जाता है।[48]

इंग्लैंड में कोर्ट ऑफ अपील की यह परिपाटी है कि खंडपीठ समान रूप से विभाजित होने की दशा में अपील खारिज कर दी जाती है, परन्तु भारत में ऐसा नहीं होता। ऐसी परिस्थिति अब बहुधा उत्पन्न नहीं होती क्योंकि अधिकतर खंडपीठों में न्यायाधीशों की संख्या विषम होती है जिसके कारण उनके समानतः विभक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

2. ऐसे पूर्व-निर्णय जिनकी बन्धनकारी शक्ति कालान्तर में नष्ट हो जाती है

(i) निराकृत किये जाने योग्य विनिश्चय (Abrogative Decisions)—यदि न्यायालय द्वारा किसी मामले में निर्णय दिये जाने के बाद किसी ऐसे नियम या अधिनियम को अधिनियमित किया जाता है जो उस निर्णय के विपरीत हो या उससे विसंगत हो अथवा यदि उसे उच्चतर न्यायालय द्वारा पलट दिया जाता है या अस्वीकार किया जाता है, तो ऐसा निर्णय अपना बन्धनकारी प्रभाव खो देगा, अर्थात् उसकी बन्धनकारी शक्ति नष्ट हो जायेगी। इसके अतिरिक्त निराकृत (abrogate) कर दिये जाने के फलस्वरूप भी न्यायिक निर्णय का बन्धनकारी प्रभाव समाप्त हो जाता है। निर्णय पलट देने (over-ruling) का अर्थ यह है कि अपीलीय न्यायालय उस मामले की अपील में अथवा अन्य मामले में यह घोषणा करता है कि पूर्ववर्ती निर्णय गलत दिया गया है; अतः उसका अनुसरण नहीं किया जाना चाहिये। यह आवश्यक नहीं है कि पूर्व-निर्णय को अभिव्यक्त रूप से ही निराकृत किया जाए। उसे विवक्षित (implied) रूप से भी नामंजूर किया जा सकता है। वर्तमान में निर्णयों को प्रायः विवक्षित रूप से उलट देने की प्रवृत्ति ही देखी जाती है। यदि कोई निर्णय गलत होता है या तर्कसंगत नहीं है, तो किसी अधिनियम द्वारा या उच्चतर न्यायालय के निर्णय द्वारा उसे निराकृत किया जाता है। इस कथन की पुष्टि लैटिन सूत्र "*Cessante ratione legis cessat ipsa lex*" से हो जाती है जिसका आशय यह है कि ''जब विधि का तर्क ही समाप्त हो जाता है, तो विधि स्वयमेव समाप्त हो जाती है।''

(ii) भिन्न आधार पर विनिश्चय की पुष्टि अथवा निराकृति—कभी-कभी अपीलीय न्यायालय द्वारा निचले न्यायालय के किसी निर्णय की पुष्टि तो की जाती है लेकिन यह निर्णय के आधार से भिन्न आधार पर की जाती है। इसी प्रकार अपील में भिन्न आधार पर उसे नामंजूर कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी उच्च न्यायालय में कोई मामला एक आधार पर विनिश्चित किया जाता है और बाद में जब इसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जाती है तथा उच्चतम न्यायालय वही निर्णय देता है किन्तु दूसरे आधार पर, तो ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय का विनिश्चय (decision) निराकृत नहीं माना जायेगा

---

48. *मानहासा के महाराज बनाम जगन्नाथ कुलू,* 55 मद्रास 883.

वरन् उसकी निरपेक्ष शक्ति (absolutely binding force) समाप्त हो जायेगी तथा यदि अन्य न्यायालय चाहें तो उसका अनुसरण कर सकते हैं और यदि न चाहें तो वैसा करने के लिए वे बाध्य नहीं होंगे।

विधि के स्रोत के रूप में न्यायिक पूर्व-निर्णय का महत्व
(Importance of Judicial Precedents as a Source of Law)

समाज की सामान्य धारणाएँ न्यायाधीश के निर्णयों में प्रतिबिम्बित होती रहती हैं। कभी-कभी न्यायाधीशों द्वारा दिये गये निर्णय विवाद को निपटाने के साथ-साथ सामान्य विधिक सिद्धान्तों को प्रतिस्थापित करते हैं जो न्यायालयों के लिए विधि का प्रभाव रखते हैं। इसी विधि-निर्माण की प्रक्रिया को न्यायिक पूर्व-निर्णय (Judicial precedent) कहते हैं। न्यायालयों को विधि का निर्माण करने की शक्ति है अथवा नहीं, इस विषय में विधिशास्त्रियों में मतभेद है। तथापि इस सम्बन्ध में दो प्रमुख विचारधाराएँ हैं जिनका उल्लेख सिद्धान्तों के रूप में किया गया है—

(1) न्यायिक पूर्व-निर्णय का घोषणात्मक सिद्धान्त
(Declaratory Theory of Judicial Precedents)

इस सिद्धान्त (Theory) के अनुसार न्यायाधीशों का कार्य केवल घोषणात्मक है, सृजनात्मक नहीं। न्यायाधीशों द्वारा विवादों के विनिश्चय में पहले से विद्यमान किसी विधि के नियमों का निर्वचन किया जाता है और अपने निर्णय में इन नियमों को समाविष्ट करके उस विधि को घोषित किया जाता है। अत: वे किसी नई विधि का सृजन नहीं करते वरन् विद्यमान विधि का अर्थान्वयन मात्र करते हैं। न्यायिक पूर्व-निर्णय के घोषणात्मक सिद्धान्त के प्रणेता ब्लैकस्टोन हैं जिनके अनुसार न्यायाधीश का कार्य विधि की घोषणा करना है न कि विधि का निर्माण करना।[49] उनका स्पष्ट मत था कि 'न्यायिक विधान' (judicial legislation) या 'न्यायाधीश द्वारा निर्मित विधि' (judge-made law) जैसी कोई चीज नहीं है। न्यायाधीशों का कार्य तो केवल यह है कि वे प्रचलित विधि को सुरक्षित रखें तथा आवश्यकतानुसार उसकी व्याख्या करते हुए अपने निर्णय में उसका उल्लेख करें।

पूर्व-निर्णय सम्बन्धी ब्लैकस्टोन के घोषणात्मक सिद्धान्त की आलोचना करते हुए ऑस्टिन कहते हैं कि यह धारणा कि न्यायाधीश विधि का निर्माण नहीं करते बल्कि उसकी केवल घोषणा करते हैं, एक नादान परिकल्पना (childish-fiction) मात्र है।[50] बेन्थम के अनुसार यह कहना कि न्यायाधीश विधि की केवल घोषणा करते हैं, 'सरासर मिथ्या' है। उनका तर्क है कि वस्तुत: घोषणात्मक सिद्धान्त की आड़ में न्यायाधीशगण विधायन के अधिकार को चुरा लेते हैं क्योंकि खुले-आम उन्हें ऐसा करने में संकोच होता है। डायसी (Diecy) के विचार से इंग्लैण्ड की विधि का सर्वोत्तम भाग न्यायाधीश द्वारा निर्मित विधि (Judgemade law) है, अर्थात् कॉमन लॉ अधिकांशत: उन नियमों से मिल कर बना है जिनका संकलन न्यायाधीशों के निर्णयों में से किया गया है।[51]

डॉ० ऐलन (Allen) के विचार से ब्लैकस्टोन तथा बेन्थम, दोनों के ही विचार अतिशयोक्ति रंजित प्रतीत होते हैं। उन्होंने इन दोनों ही विधिशास्त्रियों के विचारों में संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हुए कथन किया कि 'न तो यह कहना गलत है कि न्यायाधीश विधि का निर्माण करते हैं और न यही गलत है कि वे विधि की घोषणा करते हैं।' न्यायाधीश विचाराधीन मामले की परिस्थितियों के समाधान के लिए जब पहले से ही विद्यमान किसी विधिक नियम का प्रयोग करता है, तो वह निश्चित ही विधि में नवीन योगदान करता है; फिर भी वह एकदम नये तत्व उसमें नहीं ला देता। उसका यह प्रयास रहता है कि वह विधि को प्राप्त करे उसे बनाये नहीं।'[52]

---

49. ब्लैकस्टोन : कमेन्ट्रीज, पृ० 69 [*jus desecreet non jus dare*].
50. ऑस्टिन : ज्यूरिसप्रूडेन्स, पृ० 655.
51. डायसी : लॉ एण्ड पब्लिक ओपीनियन इन इंग्लैण्ड, पृ० 361.
52. ऐलन : लॉ इन दि मेकिंग (6ठाँ संस्करण), पृ० 213.